बच्चों की दुनिया और उनका बचपन

मोईनुद्दीन ख़ान*

हमारे स्कूलों एवं अभिभावकों ने आज बेमौसम कार्बाइड् से पके हुए आम की तरह, बच्चों को बड़ा करने की होड़-सी लगा रखी है। बच्चों पर बोझ का आलम यह है कि शैक्षिक सत्र की तो बात छोड़िए, गर्मी की छुट्टियों में भी बच्चों को नहीं बख्शा जा रहा है। अब बच्चे गर्मी की छुट्टियों में नाना-नानी, दादा-दादी या पड़ोस के बच्चों के साथ भी खेलने की फ़ुरसत नहीं पाने वाले हैं। क्या आपने हमारे विद्यालय प्रशासन को इतना हलका समझा है कि वे बच्चों को इतनी मोहलत दे देंगे? माना यशपाल समिति (1993) की संस्तुतियों तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय (5 अक्तूबर 2018) के अनुदेशन ने उनके 'बस्ते के बोझ' को खासा कम करने का सुझाव दिया है, पर उस बोझ का क्या, जो हम उन्हें मानसिक तौर पर कई रूपों में दे रहे हैं। यदि व्यवस्था ऐसी भी हो जाए कि कक्षा 8 तक के हर बच्चे को बिना बस्ते के स्कूल भेजा जाए, तब भी वह बच्चे तब तक आज़ाद व चित्त-प्रफुल्ल नहीं महसूस करेंगे, जब तक कि उन्हें मानसिक रूप से आज़ाद न किया जाए। इस लेख में स्कूलों में बच्चों पर पड़ने वाले दबावों, घरों के हालात, बच्चों की मन:स्थिति, शिक्षकों के रवैये व खुले अंदाज़ में बच्चों की स्कूली व घरेलू परवरिश पर एक दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण दिया गया है।

हमारे देश में विद्यार्थियों के शैक्षिक बोझ पर चर्चा समय-समय पर होती रही है। *यशपाल समिति (1993)* ने अपनी संस्तुतियों में इसके घटाव की ओर लोगों का ध्यान खींचा। 5 अक्तूबर 2018, को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के दिशा-निर्देशानुसार कक्षा 1 व 2 के बच्चों को गृह-कार्य से मुक्त कर दिया गया। विषयों की संख्या पर भी निर्देश दिए गए और साथ-ही-साथ स्कूली बच्चों के अधिकतम भौतिक (बस्ते के) बोझ का माप निर्धारित कर दिया गया (कक्षा 10 तक)। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* भी यह सलाह देती है कि बच्चों का विद्यालयी संसार उनके घरेलू संसार से जुड़ा हुआ हो। उन्हें किताबी ज्ञान से निकाल कर प्रयोगात्मक ज्ञान प्रदान किया जाए। बच्चों के शैक्षिक बोझ को हल्का-फ़ुल्का बनाने की कवायदें लगातार चलती रही हैं और बहुत हद तक कारगर भी रही हैं। पर इन बोझों के अलावा कुछ ऐसे बोझ भी हैं जो हम वयस्कों (शिक्षकों, अभिभावकों, पड़ोसियों, विद्यालय प्रशासकों आदि) द्वारा बच्चों को अनजाने में दी गई सौगात (दरअसल अभिशाप) है। भावी शिक्षकों व अभिभावकों को इस ओर ध्यान देकर अपने नज़रिये में बदलाव लाना ही होगा। यह

**शोधार्थी*, शिक्षा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश – 226 007
504/54, टैगोर मार्ग, डालीगंज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश – 226 020

नौनिहालों के उज्ज्वल भविष्य (असल में भारत के भविष्य) का सवाल है। बस्ते में भरी भारी किताबों के बजाय बच्चों का अपना पुस्तकालय हो। विद्यालय में कुर्सियाँ हों न हों, पर दरी बिछी हो जिस पर बच्चे बैठकर (जैसा चाहें) पढ़ सकें (ऐसा भला कौन-सा बच्चा होगा जो अपने घर कुर्सी पर बैठकर या एक ही जगह टिककर पढ़ने वाला हो?)। पर हम शायद विद्यालयों में गैर-परंपरागत माहौल देने से समाज से मिलने वाली आलोचना से डरते हैं।

मेरे अनुसार कम-से-कम कक्षा 5 तक का हर स्कूली कार्यक्रम ऐसा हो जहाँ बच्चों पर किसी भी तरह के बोझ का नामोनिशान न हो। अध्ययन-अध्यापन और परीक्षा को आसान व रोचक बनाकर परीक्षा तथा परिणाम के भूत से बच्चों को बचाना एक लक्ष्य हो। रूसो अपने एमील (काल्पनिक) को भी गैर-परंपरागत शिक्षा देने का पक्षधर था। हालाँकि उसे विरोध का सामना करना पड़ा, पर आज रूसो को कौन नहीं पढ़ना चाहेगा!

बच्चे की नज़र में शिक्षक

कई बार बच्चा विद्यालय नहीं, कक्षा से डरता है। यह सुनने या पढ़ने में बड़ा विरोधाभासी प्रतीत होता है, पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिपात करने से पता चलता है कि बच्चे स्कूल का नाम सुनकर खुश होते हैं; बस वे किसी खास कक्षा (कालांश) से घबराते हैं (यह इशारा सुधी पाठकों के लिए काफ़ी है)। कक्षा तीन के रोहन ने “आपका प्रिय शिक्षक” शीर्षक पर निबंध में अपनी तोतली ज़बान-सी ही तोतली लिखावट में बड़ी मासूमियत से लिखा कि ‘अमित सर बहुत अच्छे हैं, क्योंकि वह गृह-कार्य नहीं देते हैं।’ सोचने की बात है कि क्या गृह-कार्य देना या न देना बच्चे की पसंद-नापसंद का कारण हो सकता है? शायद ऐसा न भी हो पर हमें इस बात पर तो इत्तेफ़ाक रखना ही होगा कि कक्षा का माहौल खुशगवार बनाया जाए, विद्यालय घर जैसा हो तथा गृह-कार्य यदि हो तो मज़ेदार हो ताकि रोहन का प्रिय शिक्षक बना जा सके।

हम शायद बाल मनोविज्ञान को दरकिनार करके ही यह तय करते हैं कि बच्चे के लिए क्या सही और क्या गलत है, क्योंकि वह अभी फ़ैसले लेने के लिए बहुत छोटा है। पर उसके चश्मे से भी हम शिक्षकों को देखना होगा। नज़रिया थोड़ा-सा बदलना होगा।

पिता का सम्मान व उनकी आमदनी का फ़र्क

कक्षा के बच्चों की बातचीत में उनके पिता बड़े ही काबिल व्यक्ति होते हैं। कोई कहता है कि उसके पिता डॉक्टर हैं, कोई शिक्षक, कोई किसान, कोई माली, कोई ड्राइवर, कोई ठठेरा, कोई मिठाई वाला तो कोई बच्चा शान से बखान करते हुए बताता है कि उसके पिताजी मिट्टी के बर्तन बड़े शानदार बनाते हैं और मज़े की बात यह है कि बाकी बच्चे बड़ी उत्सुकता से सुनते व विश्वास करते हैं। पर तभी महीने के पहले सप्ताह के आखिरी दिन न जाने कहाँ से प्रधानाध्यापक की ओर से जारी की गई एक वीभत्स पर्ची, कक्षा अध्यापक के हाथ में आ जाती है। इसमें ऐसे बच्चों के नाम होते हैं जिनकी पिछले महीने की फ़ीस नहीं जमा हुई। कक्षा में उनका नाम बोलने के साथ ही उनके माता-पिता को बुलाने का परवाना भी होता है। शायद यही वह क्षण है जब बच्चों को डॉक्टर व ठठेरे में (आमदनी के आधार पर) फ़र्क समझ आ जाता है अर्थात् पिता के सम्मान एवं उनकी आमदनी के बीच के द्वंद्व का बालमन पर

भय। क्या यह बोझ सतही है? शायद नहीं। मैं हैरान हूँ *तोत्तो चान* (चर्चित पुस्तक की बाल किरदार) की माँ की बाल समझ को देखकर कि उसने 20 सालों तक अपनी बेटी से सिर्फ़ इसलिए यह नहीं बताया कि उसे सात वर्ष की आयु में उसकी शरारत की वजह से विद्यालय से निकाल दिया गया था कि उसके बाल मन पर भला क्या प्रभाव पड़ेगा।

बच्चा है शरारती

शिक्षकों व अभिभावकों की आम शिकायत है, बच्चों की शैतानी। बच्चा तो शैतानी करेगा ही। वो आज़ाद रहना चाहता है। हम उन्हें ज़ंजीरों में (नकली अनुशासन में) बाँधते ही क्यों हैं? कुछ शिक्षक बच्चों के अटपटे व बार-बार पूछे जाने वाले सवालों से आतंकित रहते हैं। वे चाहते हैं कि बच्चे उनसे सीधे व सरल सवाल पूछें। क्यों भला? आप भले यह सवाल करें कि एक शेर और एक हिरण लड़ेंगे तो कौन जीतेगा? पर बच्चा भला यह क्यों पूछेगा? वह तो पूछेगा कि दो शेर अगर लड़ें तो कौन जीतेगा? मेरे एक मित्र तो यहाँ तक कहते हैं कि इन बच्चों को रोका न जाए तो ये आगे चलकर नुकसानदेह साबित हो सकते हैं। मैं कहता हूँ जनाब, फ़ायदे और नुकसान की बात तो बाद की है, पहले आप उन्हें आगे चलने तो दीजिए।

एक कवि का परिवार अपने कवि मित्र के घर गया। खेलते वक्त उनके बच्चे से मेज़बान कवि के घर का एक कीमती फूलदान टूट गया। वहाँ तो वे खामोश रहे, पर अपने घर आने पर उन्होंने बच्चे की खूब खबर ली। संयोग से दुबारा उन कवि मित्र के घर जाना हुआ तो वही नटखट बच्चा वहाँ बड़े अदब से रहा। दार्शनिक मिज़ाज मेज़बान कवि ने यह बात फ़ौरन भाँप ली। विदा करते वक़्त वह दरवाज़े तक छोड़ने आए और कहा कि इस बार आप बच्चे को साथ क्यों नहीं लाए? इस पर मेहमान कवि ने (अचरज से) अपने बच्चे के सिर पर हाथ रखते हुए कहा, यह है तो। तब मेज़बान कवि ने चुभते हुए लहज़े व बेखयाली में कहा — अच्छा! मुझे लगा आप मिट्टी का गुड्डा साथ लाए हैं। मेहमान कवि बेचारे झेंप गए।

हमें बच्चों को समझना होगा। जिन्हें हम उनकी शैतानी कहते हैं, दरअसल वही उनकी फ़ितरी (प्राकृतिक) आदत है। ज़रूरी नहीं कि हर बच्चा आपकी कक्षा में अपनी उपस्थिति सिर्फ़ इसलिए दर्ज कराता हो कि उसे आपसे गणित के कुछ हुनर सीखने हों। बहुत मुमकिन है कि कोई नटखट बच्चा सिर्फ़ आपकी नाक पर सरक कर आ गए आपके चश्मे को देखना पसंद करता हो, कक्षा के बीच-बीच में आपका गाना गाना उसे भाता हो या फिर आपकी मज़ेदार तोंद उसे हँसाती हो। जो भी हो, आपको अपने इन सभी अंदाज़ों को ज़िन्दा रखते हुए उसमें गणित की रुचि (उदाहरणस्वरूप) ज़रूर जगानी है और तब शायद उसकी उपस्थिति का कारण यही बन जाए। कुछ शिक्षक तो बच्चे के गृह-कार्य को अधूरा पाने पर अपनी नाक का सवाल समझते हैं। कभी-कभी खलनायकी के रूप भी दिखाते हैं। कई बार इसे बच्चे द्वारा जानबूझकर की गई शैतानी कहते हैं। ये सारी ही बातें निराधार प्रतीत होंगी, बस आप स्वयं कक्षा में बच्चा बन जाइए। गृह-कार्य का भूत, बच्चे पर हावी न होने दें। छुट्टी के दिन किसी बच्चे के घर पहुँचकर आप उसका दिन आनंददायक बना सकते हैं (यह काम विद्यालय प्रशासन की ओर से भी नियमित रूप से निर्धारित हो सकता है)।

बच्चे की दुनिया — ज़रा जियूँ जी

बच्चा परमेश्वर की परम कृति है। जन्म से स्वतंत्र है। स्वतंत्र रहना भी चाहता है। रोकटोक से कुंठित हो उठता है। उसे शिक्षकों से, अभिभावकों से, समाज से, गर्ज़ हर उस शख्स से जो उसके इर्द-गिर्द है; इस बात की उम्मीद होती है कि सभी उसी के अनुसार कार्य करेंगे। उसके मन में सवाल है कि हफ़्ते में तीन छुट्टियाँ भी तो हो सकती हैं। चाह है हवाओं को छूने की, बारिश को अपनी अनुमति देने की कि वह बरसे और ख्वाब देखने की। पर पहले रोकटोक से ही उसमें डर पैदा हो जाता है। नन्हा मोईन कैसे अपनी उम्मीद, हाल व डर बयाँ करता है, ज़रा देखिए—

मैं प्यारा सा इक् बच्चा हूँ
मैं प्यारा सा इक् बच्चा हूँ
काम करूँगा बड़े-बड़े
दिनभर तो मैं खेला करता
रात को सोता खड़े-खड़े
मम्मी कहतीं— उठ जा बेटा
मैं आवाज़ लगाता पड़े-पड़े
मुन्नी ने राखी बाँधी है
भले ही दिनभर लड़े-लड़े
मम्मी तो रोटी देती हैं
मैं पापड़ खाता कड़े-कड़े
मिठाई खूब खाता हूँ
दाँत हैं मेरे सड़े-सड़े
मोती (पालतू कुत्ता) को न जाने देता
दरवाज़े पर मैं अड़े-अड़े
मोती ने दौड़ाकर काटा
देखो दाँत गड़े-गड़े
पौधों को डण्डे से पीटा
पत्ते उसके झड़े-झड़े
किताबों को बस्ते में ठूँसा
पन्ने उसके मुड़े-मुड़े
पापा ने ज़ोरों से डाँटा
होश हैं मेरे उड़े-उड़े
मैं प्यारा सा इक् बच्चा हूँ
काम करूँगा बड़े-बड़े

— मोईनुद्दीन ख़ान

बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु उन पर हमारे द्वारा डाले जा रहे सारे बोझ (जाने-अनजाने) हटाने होंगे। स्कूल का अपना बागीचा हो तो वहाँ शिक्षक खुद बच्चों संग जाएँ और उन्हें प्रकृति से रूबरू कराएँ। तैराकी व दौड़ उनमें स्फूर्ति भर देगी। खेल व संगीत से शिक्षा बच्चों को नया अनुभव कराएगी। रेडियो कक्षा की व्यवस्था (जहाँ बच्चे समाचार सुनने या अन्य कोई शैक्षिक कार्यक्रम सुनने के लिए एक खास समय पर एकत्रित हों) उन्हें जागरूक बनाएगी। साथ ही उन्हें ये रोचक भी प्रतीत होगा।

बच्चे गाते हैं अपने गीत — बेतुके गीत का मनोविज्ञान

मुझे अपनी 25वीं सालगिरह (वर्षगाँठ) का वर्षों से बड़ी बेसब्री से इंतज़ार रहा है। क्योंकि मेरी माँ ने यह कह रखा था कि वह मुझे इस (25वीं) सालगिरह पर ही एक विशेष तोहफ़ा देगी। पिछली बार जब यह मौका आया तो मैंने तपाक से अपने नायाब तोहफ़े की माँग की। तब उसने अलमारी से अपने ज़ेवर का एक डिब्बा निकाला। मैं बड़ी उत्सुकता से यह सब देख रहा था। फिर उस डिब्बे से उसने एक डिबिया निकाली, उस डिबिया से छोटी-सी कपड़े की थैली और फिर उस थैली से एक पुरानी पर्ची। और उस

पर्ची को माँ ने बड़े हसरत से मुझे थमा दिया। मैंने उसे खोला तो उसमें माँ के हाथों की लिखावट में बड़ी ही बेतुकी दो लाइनें लिखी मिलीं —

आरे खसी खसीरा
कोरे रगे रगीरा

मैंने बेचैनी, दुःख, गुस्से और अचरज से पूछा कि यह क्या है? तो माँ ने बताया कि ये तुम्हारी खुद की गढ़ी हुई पंक्तियाँ हैं। ये तुम पाँच वर्ष की आयु में गुनगुनाया करते थे, पर मैंने तुम्हें कभी टोका नहीं। बल्कि इन्हें लिखकर सहेज लिया। मैं सोचने लगा कि क्या मेरे बालमन में भी एक कवि था? पर मेरी माँ को यह मनोविज्ञान कैसे पता? आज के भावी शिक्षकों को इस बाल मनोविज्ञान पर खासा ध्यान देना होगा। बच्चे अकसर गुनगुनाते हैं (बेतुका ही सही)। उन्हें बिलकुल न टोकें, बल्कि उलटा-सीधा राग अलापने दें। इस तुकबंदी से शब्दकोश में तो वृद्धि होगी ही, साथ ही सार्थक व निरर्थक शब्दों का भेद भी वे बखूबी जान पाएँगे।

अनुशासित पिता और मदमस्त बच्चा

मेरा मित्र एक दिन अपने आठ साल के बच्चे की बड़ी लगन से शिकायतों की पोटली खोलते हुए कहने लगे —स्कूल से आते ही बस्ता धड़ाम से पटक कर खेलने लगता है, घूमता है, न जाने क्या-क्या चीज़े एक झोली में इकट्ठा करता रहता है, गंदा रहता है, किताबें फटी हुई होती हैं, गृह-कार्य तो बिलकुल भी नहीं करता, कार्टून तो मानो इसका सगा भाई हो। मित्र की इस नादानी पर मुझे हँसना आया, पर मैंने काबू रखते हुए गंभीरता से पूछा— और? जनाब ने भी बात की गंभीरता को समझते हुए उत्तर दिया—चित्रकारी से दीवार खराब कर दी है। मेरा बस नहीं चला कि तुरंत कह दूँ; घर में आए पिकासो की अवहेलना कर रहे हैं आप। डर लगा कि कहीं सामने आई हुई चाय हटा न ली जाए। सो मौन रहा।

क्या आप (शिक्षक व अभिभावक) समझते हैं कि बच्चे यह मानें कि उनकी एक अहम (खास) ज़िम्मेदारी है—गृह-कार्य पूरा करना, कक्षा में अनुशासित रहना या घर जाते ही किताबें निकाल कर पढ़ने बैठ जाना? बाल मनोविज्ञान तो कहता है कि इससे ज़्यादा बच्चे अपनी ज़िम्मेदारी इस बात में समझते हैं कि जिस टोली के वे सदस्य हैं, घर पहुँचते ही पहले उस टोली के अन्य सदस्यों के साथ सामुदायिक पार्क में इकट्ठा हुआ जाए और एक दिन पहले किए गए वादे को पूरा किया जाए। चाहे वह वादा बगल वाली आण्टी के घर के दीवार के किनारे लगे हुए अमरूद के पेड़ से अमरूद तोड़ने का ही क्यों न हो। हालाँकि इस बात की शिकायत से पिताश्री का डण्डा हरकत में आ सकता है। पर आखिरकार वादा जो रहा, वो भी बच्चों का वादा!

खास अनुभव

बी.एड. प्रैक्टिस टीचिंग के दौरान मैं एक खास अनुभव से दोचार हुआ (सामना किया)। मेरे सभी साथी कक्षा 6 के एक बच्चे से खासे परेशान थे। इलज़ाम था कि बड़ा शरारती है, सवाल दागता है, जेब में कबाड़ रखता है, बेतुके तर्क देता है, सांवेगिक रूप से अस्थिर है व जल्दी विचलित हो जाता है। हम लोगों को अवलोकन करके एक विद्यार्थी-शिक्षक डायरी भी भरनी थी। मेरे सभी साथी रोज़ "शरारती व न पढ़ने वाला बालक" के कॉलम में उसी का नाम लिखते। मैं यह काम अभी रफ़ के तौर पर करता चल रहा था। मैं हड़बड़ी नहीं करना चाह रहा था। वैसे

प्रधानाचार्या महोदया ने बच्चों की जो सूची थमाई थी, उसमें उसके पिता के नाम के आगे 'स्वर्गीय' शब्द भी मुझे उसमें सहानुभूति उत्पन्न करने को बाध्य कर रहा था। एक दिन कक्षा को रोचक बनाने हेतु मैंने गणितीय तर्क के एक उच्च स्तर के सवाल को श्यामपट्ट पर लिखकर बच्चों से उसका उत्तर देने को कहा और साथ ही उन्हें ईनाम का भी आश्वासन दिया। बाकी बच्चे जब तक इस नए प्रश्न की प्रकृति समझ पाते तब तक उस शरारती बच्चे का उत्तर आ चुका था। उसकी इस असाधारण समझ से मैं अवाक् रह गया। मेरी उसमें विशेष रुचि जगी। उन दिनों मैं डॉक्टर अमिता बाजपेयी जी की एक शानदार पुस्तक *विशिष्ट बालक* पढ़ रहा था। इस बच्चे के करीब से अवलोकन और किताब से मिलने वाले अनुभव ने मुझे ये मानने पर मजबूर कर दिया कि वह वास्तव में एक सृजनात्मक बालक था।

अब मैंने अपनी डायरी भरना शुरू की और उसे 'सृजनात्मक बालक' वाले कॉलम में स्थान दिया। न जाने शिक्षक बच्चों के बोलने से क्यों इतना घबराते हैं? बच्चा बोलेगा नहीं तो उस तोहफ़े (ज़बान/आवाज़) का क्या मोल जो कुछ ही वर्षों पहले उसने पाई है? हमें अपने चश्मे (बच्चों की समझ) पर पड़ी धूल को साफ़ करने की आवश्यकता है।

भावी शिक्षकों से

आज भी विद्यालयों में कुछ ऐसे शिक्षक हैं जिनका उदाहरण आदर्श शिक्षक के रूप में समूचे भारतवर्ष में दिया जा सकता है, पर इनकी संख्या गिनी-चुनी ही है। बच्चों को समझने के लिए व उनसे उसी तरह पेश आने के लिए सभी शिक्षकों से बाल मनोविज्ञान का अध्ययन व उसकी समझ अपेक्षित है। भावी शिक्षकों को उत्तम नागरिक तैयार करने व बचपन बनाने (सँवारने) के लिए ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर लेनी होगी। बच्चों को सही ऐनक से देखने की ज़रूरत को महसूस करना होगा —

आप से
अपने रुख को ज़रा बदल लीजिए
नौनिहालों की खुशी का जतन कीजिए
प्यार दीजिए, कुछ पल दीजिए
ज़िम्मेदारी का आप निर्वहन कीजिए
आज दीजिए, उन्हें कल दीजिए
कुछ नहीं, बस उन्हें आप बचपन दीजिए
कच्चे हैं अभी, न पका फल कीजिए
न वीरान उनका चमन कीजिए
न औरों की आप नक़ल कीजिए
नया आप करेंगे, वचन दीजिए
सवालों को उनके हल कीजिए
हैं उस्ताद आप तो सहन कीजिए
फूल हैं, मुरझायें तो जल दीजिए
बालमन पर अध्ययन गहन कीजिए
नौनिहालों की खुशी का जतन कीजिए

— मोईनुद्दीन ख़ान

बच्चे और हम — नैतिक शिक्षा की दरकार किसे?

दुनिया भर के बच्चों के स्कूली पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा की पाठ्यपुस्तकें बहुतायत में शामिल मिलेंगी। बच्चों को नैतिक समझ इतनी हो न हो, पर यह तो तय है कि वे सीखप्रद कहानियों को पढ़कर खूब आनंदित होते हैं। ऐसी पुस्तकों का समावेश तर्कसंगत भी लगता है। पर कभी आपने बच्चों को साज़िश (षड्यंत्र) रचते देखा है (हम बड़ों में भी यह दुर्गुण

नहीं है शायद, है न?)? हाँ, वे शरारत भले खूब करते हों। बड़े अपने आचार में सुधार रखें तो बच्चे देखकर व अनुकरण से ही बखूबी सीख लेंगे। तब शायद यह बिंदु (नैतिक शिक्षा की पुस्तकों वाला) सोचने वाला है। आप खुद गौर करें कि क्या अपने किसी सहकर्मी को उसकी किसी खता पर आप उसे दिल से माफ़ कर पाते हैं, जबकि उसने आपसे तीन बार क्षमा याचना की हो। और इन मासूमों में तो सिर्फ़ उँगली मिलाने भर मात्र से दोस्ती फिर से पुरानी जैसी और पक्की हो जाती है। अनुकरण व विश्वास का आलम यह है कि बच्चों को परियों की कहानियाँ भी सत्य प्रतीत होती हैं और वे बड़ी मासूमियत से सुनते हैं। बच्चे खेल में भी बेईमानी नहीं करते। वे साथ दौड़ना चाहते हैं। प्रथम-द्वितीय का फ़र्क उन्हें हम बता देते हैं। महँगे व सस्ते खिलौने, अमीरी व गरीबी आदि, सारी देन तो सभ्यता की है। अंतर की भाषा तो हम ही सिखाते हैं।

"जब मैं बच्चा था तो छोटी-छोटी चीज़ों से अपने खिलौने बनाने और अपनी कल्पना में नए-नए खेल ईजाद करने की मुझे पूरी आज़ादी थी। मेरी खुशी में मेरे साथियों का पूरा हिस्सा होता था; बल्कि मेरे खेलों का पूरा मज़ा उनके साथ खेलने पर निर्भर करता था। एक दिन हमारे बचपन के इस स्वर्ग में, वयस्कों की बाज़ार-प्रधान दुनिया से एक प्रलोभन ने प्रवेश किया। एक अंग्रेज़ी दुकान से खरीदा गया खिलौना हमारे एक साथी को दिया गया; वह कमाल का खिलौना था — बड़ा और मानो सजीव। हमारे साथी को उस खिलौने पर घमंड हो गया और अब उसका ध्यान हमारे खेलों में इतना नहीं लगता था; वह उस कीमती चीज़ को बहुत ध्यान से हमारी पहुँच से दूर रखता था, अपनी इस खास वस्तु पर इठलाता हुआ। वह अपने अन्य साथियों से खुद को श्रेष्ठ समझता था, क्योंकि उनके खिलौने सस्ते थे। मैं निश्चित तौर पर कह सकता हूँ कि अगर वह इतिहास की आधुनिक भाषा का प्रयोग कर सकता तो वह यही कहता कि वह उस हास्यास्पद रूप से श्रेष्ठ खिलौने का स्वामी होने की हद तक हम से अधिक सभ्य था। अपनी उत्तेजना में वह एक चीज़ भूल गया — वह तथ्य जो उस वक़्त उसे बहुत मामूली लगा था कि इस प्रलोभन में एक ऐसी चीज़ खो गई जो उसके खिलौने से कहीं श्रेष्ठ थी, एक श्रेष्ठ और पूर्ण बच्चा। उस खिलौने से महज़ उसका धन व्यक्त होता था, बच्चे की रचनात्मक ऊर्जा नहीं, न ही उसके खेल में बच्चे का आनंद था और न ही उसके खेल की दुनिया के साथियों को खुला निमंत्रण" (रबीन्द्रनाथ टैगोर के निबंध 'सभ्यता और प्रगति' से)। एक बार मूल्यों की शिक्षा पर अपनी सोच के मुताबिक ही आगरा के एक शिक्षा संस्थान में आयोजित सेमिनार में मैंने अपना पेपर प्रस्तुत किया। एक कुशल व भद्र शिक्षिका ने मेरे विचारों से अपनी थोड़ी असहमति जताई। यह दूसरी बात है कि कार्यक्रम समाप्ति पर मैंने उन्हें अपनी एक सहकर्मी से बात करते हुए सुना, जिसमें आर.टी.आई. से वो किसी के नाक में दम करने की बात कर रही थीं।

अभिभावकों की ओलंपिक दौड़

श्रीमती ख़ान आजकल थोड़ा परेशान हैं, क्योंकि उनके बच्चे ने सालाना इम्तेहान में अपने पड़ोस में रहने वाले सहपाठी से दो अंक कम प्राप्त किए हैं। अगली बार उससे आगे निकलने की हिदायत भी उन्होंने अपने बच्चे को दे दी है; और तो और गणित का (मुश्किल विषय जो ठहरा) एक शिक्षक भी घर

पर पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया है। अभिभावकों की यह दौड़ बच्चों को भला कहाँ ले जाकर पटकेगी? गृह-कार्य को लेकर शिक्षक जितना सतर्क है, माता-पिता उससे दोगुना। गृह-कार्य जाँचना वे अपना सबसे बड़ा धर्म समझते हैं, क्योंकि उनके हिसाब से बच्चे इसमें लापरवाही बरतते हैं। कई बार तो इसे बच्चों के परीक्षा परिणाम से जोड़कर भी देखते हैं। स्कूल के बाद घर पर इतना बोझ कहीं उसके बचपन को डुबो तो नहीं रहा?

बहुत छोटे बच्चों को भी कंप्यूटर या स्मार्टफ़ोन थमाया जा रहा है। इसे समय की माँग बताकर अभिभावक ये भूल कर बैठते हैं कि आभासी दुनिया में खोए रहने वाली बीमारी की मशीन उन्होंने बच्चों को फ़राहम (उपलब्ध) करा दी है। यदि आप इसे बच्चे के मनोरंजन का साधन मानते हैं तो निस्संदेह आप गलतफ़हमी में जी रहे हैं। बच्चे बड़े ही विनोदशील होते हैं। आप यह मानकर चलें कि उनमें यह हुनर कूट-कूट कर भरा होता है, आप अच्छा मज़ाक करके तो देखें। फिर भला आपसे अच्छा मनोरंजन का साधन और क्या होगा बच्चे के लिए! एक बच्ची से मेरे संवाद में ज़रा उसका लुत्फ़ अदाज़ होता मिज़ाज तो देखिए —

मैं — आपका नाम क्या है?

बच्ची — चुलबुली (हँसते हुए)।

मैं — आपका यह नाम क्यों है?

बच्ची — आपको पसंद नहीं आया क्या? (उलटा मुझसे ही सवाल दाग बैठी)।

मैं — नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं (सकपकाते हुए)। वैसे आप करती क्या हैं?

बच्ची — मैं टीचर हूँ। बहुत सारे बच्चों को पढ़ाती हूँ। आप क्या करते हैं?

मैं — (उसके जवाब से हैरान होकर) मैं भी एक शिक्षक हूँ।

बच्ची — चलिए, आप कहते हैं तो मान लेती हूँ (और सरपट दौड़ लगाकर, यह जा वह जा)।

बच्चों की अपनी ही दुनिया है जहाँ वे अपनी फ़ितरत के खुदमुख्तार (आत्मनिर्भर) और चुलबुले मालिक हैं। ऐसे में बच्चों को उनके स्वभाव के विपरीत अपने (वयस्कों के) पैमाने पर मापना उन्हें कुंठित व कुत्सित ही करेगा।

बाएँ हाथ का नालायक

कुछ बच्चों में बाएँ हाथ से कलम थामने की प्रवृत्ति देखी जाती है। उनके सुलेख भी सुंदर होते हैं (यह दाएँ हाथ की लिखावट से तुलना बिलकुल नहीं है) और फिर कुछ बच्चे जीवनपर्यंत बाएँ हाथ से ही लिखने वाले बन जाते हैं। हालाँकि शिक्षक व अभिभावक हरसंभव उनकी इस आदत को छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं। मानो बाएँ हाथ से लिखना पाप हो। हमें लिखावट चाहिए होती है या लिखावट में प्रयुक्त हाथ का प्रमाण। बड़े मज़े की बात है कि दाएँ हाथ से लिखने वाले कुछ होनहार, बाएँ हाथ से भी उतनी ही गति व निपुणता से लिखने का अभ्यास कर लेते हैं और इसे गुण स्वरूप देखा जाता है। तब हम बाएँ हाथ से लिखने की बच्चे की आदत को छुड़ाएँ क्यों? बस उसमें दाएँ हाथ से भी लिखने की आदत क्यों न डाल दें?

उदास मन किस काम का

आप कभी उदास हों और आपसे कोई काम अपेक्षित हो या आप स्वयं कुछ करना चाह रहे थे तब ज़रा गौर करें कि क्या उस काम में आपका मन लगेगा? बिलकुल नहीं। लगता है कि सब कुछ

अधूरा-अधूरा-सा है। सामने अँधेरा-सा रहता है। ऊर्जा का ह्रास होता महसूस होता है। काम में बिलकुल मन नहीं लगता। भले ही वह बात कितनी छोटी ही क्यों न हो। तब ऐसे में भला उदास बच्चे से हम कुछ अच्छा काम करने की उम्मीद कैसे लगा सकते हैं? बच्चे ज़्यादातर डाँटने, फटकारने व उनकी बात न रखने से उदास होते हैं।

छोटी-सी खुशी भी मन को हलका कर देती है। बच्चे खुश होने पर तितलियों से उड़ते नज़र आते हैं और उदास होने पर सबसे खराब कार्टून बनाकर उसमें अपने पिता या शिक्षक का नाम लिखने से भी गुरेज़ नहीं करते। शिक्षकों से उम्मीद की जाती है कि वे बच्चों को डाँटे नहीं। उन्हें उनकी गलतियों के लिए सुधार की ओर ले जाएँ। डाँटना उन्हें उदास करेगा और उदास मन किस काम का?(दुःखी बच्चा कुछ भी प्रगति नहीं कर सकता)।

रोबीला शिक्षक

बेशक शिक्षकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे बच्चों की निगरानी करें, पर यह निगरानी कहीं कड़ी निगरानी न बनने पाए। सिर पर सवार शिक्षक की संकल्पना भर मात्र से ही रूह काँप उठती है। बच्चे उनकी उपस्थिति में असहज महसूस करते हैं। उन्हें बातचीत की उतनी ही आज़ादी चाहिए जितनी आज़ादी से प्रकृति ने उन्हें ज़बान दी है। प्यार से दृष्टिपात और आँख तरेरने में बहुत फ़र्क है। सिर सवारी से बचाव (नज़रअंदाज़) कक्षा को बेहतरी की ओर ले जाएगा। जहाँ तक अनुशासन का सवाल (इस बात का डर कि ज़्यादा छूट से कक्षा अशांत न हो) है तो बेहतर संप्रेषण कला, पूर्व तैयारी, बच्चों की कक्षा में पूरी भागीदारी और विषय पर शिक्षक की अच्छी पकड़ बेहतरीन समाधान सिद्ध होंगे। तब रोबीला शिक्षक (मजबूरी वश) बनने की चाह से भी आप बच पाएँगे।

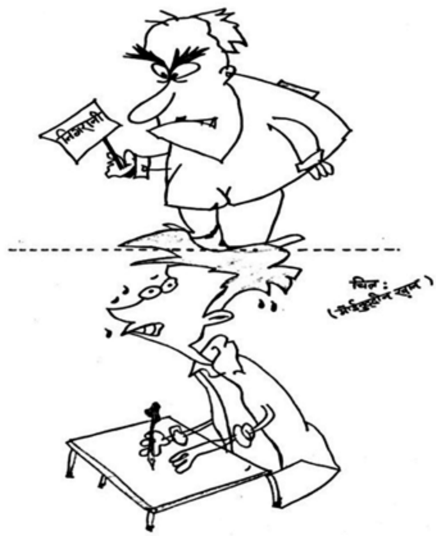

बच्चे करते हैं कानाफूसी

आमतौर पर लाख मना करने के बावजूद भी बच्चे खुसर-फुसर से खुद को रोक नहीं पाते और नतीजा कई बार शिक्षक के आपा खो बैठने के रूप में देखने को मिलता है। हो सकता है शिक्षक को लगे कि मेरे विषय में बच्चे कुछ बातचीत कर रहे हैं। बहुत मुमकिन है कि यह सही भी हो, पर यकीन जानिए बच्चे यही कह सकते हैं कि आप उनके भाई-बहन, माता-पिता या किसी अन्य रिश्तेदार जैसे लग रहे हैं, या फिर आप बहुत अच्छे हैं। हो सकता है पूर्व कक्षा में आपने कोई मज़ेदार वादा किया हो और कोई बच्चा उसे आपको खुद याद दिलाने की ज़हमत न करके यह ज़िम्मेदारी अपने पड़ोसी के सिर मढ़ना चाहता हो। तब कानाफूसी तो लाज़मी है। बस यहीं

तक तो है बच्चों की दुनिया। तब इतना परेशान होने की क्या बात है? कहीं आपकी, कम धैर्य रखने की क्षमता आपको बच्चे के डर का कारण न बना दे। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यदि धैर्य की बात करें तो यहाँ शिक्षकों को सकारात्मक रूप से संवेदनशील होने की आवश्यकता है।

खाने दो मुरब्बा

बच्चों की शरारतों से संबंधित एक और खास शिकायत है, उनका उसी काम को बार-बार करना जिसके लिए उन्हें मना किया गया हो। टॉम की कहानी आपको याद ही होगी कि कैसे उसकी मौसी ने उसे मुरब्बे के पास भी फटकने की मनाही कर रखी थी। पर क्या मजाल कि टॉम खुद को रोक पाए। और टॉम को सज़ा के रूप में मिलती है एक लंबी चारदीवारी की पुताई। क्या उसने तरकीब नहीं निकाली (आप खूब समझ रहे होंगे)? सार यह है कि हम उन्हीं चीज़ों से बच्चों को रोकते हैं जिनकी तरफ़ वे सहज ही आकर्षित होते हैं (ऐसा उनकी स्वाभाविक प्रकृति के कारण होता है)। शिक्षक उन्हें रोकने के बजाय (यदि उससे अनुशासन भंग न हो) अपनी देखरेख में वह काम अपने-आप उनको करने की पूरी छूट दें। आज़ादी उन्हें खुद ही अपना ध्यान कहीं और करने पर बाध्य कर देगी। बच्चों का अवधान बहुत समय तक एक ही स्थान या चीज़ पर नहीं रहता। बाल्यावस्था में तीव्रगामी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। किसी काम की पुनरावृत्ति भी उनका आकर्षण किसी खास काम के प्रति कम करेगी। मैंने एक बड़ा ही मज़ेदार लेख पढ़ा जिसमें एक माँ अपने बच्चे के कागज़ फाड़ने की आदत से परेशान थी। समाधान स्वरूप उसने उसके कमरे में रद्दी अखबारों का ढेर लगा दिया। अखबार फाड़कर वह बच्चा इस कदर उकताया कि अब कहने पर भी किसी कागज़ को हाथ न लगाता।

स्कूल का दिन, बातों का पिटारा

मनोवैज्ञानिक तथ्य बताते हैं कि बच्चे किसी दबाव में न हों तो बातों से जल्दी थकते ही नहीं। घर की सारी बातें अपने कक्षा-मित्र से कह देना चाहते हैं। शायद शिक्षक इसे कक्षा अशांति का एक रूप मानते हैं। जबकि कोशिश यह होनी चाहिए कि दिन भर की कक्षा ऐसी बनाई जाए कि उतनी ही बातें वह अपनी माँ के लिए घर लेकर लौटे और साथ ही शिक्षक प्रत्येक बच्चे से बात करने, सिर पर हाथ फेरने और उसकी तारीफ़ करने से न चूकें।

हर बच्चा नायाब है

एक बड़ी कक्षा में निस्संदेह बड़े तौर पर व्यक्तित्व भिन्नता कई रूपों में देखने को मिलेगी। कुछ बच्चे क्षेत्र विशेष में अपने हुनर का प्रदर्शन कर सकते हैं। तब शिक्षकों का आकर्षण भी उनकी ओर स्वाभाविक है जो स्नेह या तारीफ़ के रूप में कक्षा में झलक सकता है। पर यह एकतरफ़ा झुकाव कहीं बाकी बच्चों या किसी खास बच्चे में निराशा न भर दे। प्रत्येक बच्चा कुछ-न-कुछ खास गुण के साथ पैदा हुआ है। कुछ बच्चे संकोची स्वभाव के कारण भी कक्षा में हिचकिचाते हैं। शिक्षकों को इन्हें पहचानने की व कक्षा में समदृष्टि रखने की भरसक कोशिश करनी चाहिए।

हाफ़ डे या बोझ डे — शनिवारी हल

ज़्यादातर स्कूलों में शनिवार को आधे दिन की पढ़ाई का रिवाज है। बच्चे इसे आधे दिन की छुट्टी वाला दिन मानकर बड़े खुश होते हैं (पर नया प्रवेश पाए

बच्चे बिलकुल नहीं)। कई विद्यालयों में इस दिन बाल सभा का भी प्रावधान होता है (हर नया बच्चा उस दिन को सोच कर ही घबरा उठता है) जिसमें बच्चे अपनी प्रतिभा दिखाते हैं। इसके लिए कक्षावार या अनुक्रमांकवार क्रम निर्धारित किया जाता है।

मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। कक्षा एक में मुझे दाखिला मिला तो मेरे गाँव के ही एक लड़के ने (जो उसी विद्यालय के कक्षा पाँच में था) बताया कि स्कूल में हर शनिवार को बाल सभा होती है। जिसमें हर कोई अपनी बारी आने पर सीढ़ी पर खड़े होकर गाना सुनाता है। मेरे हाथ-पाँव फूल गए। गाना सुनाना तो मेरे बालमन ने स्वीकार किया, पर सीढ़ी पर खड़े होकर गाना सुनाने को बिलकुल नहीं। शनिवार आया तो मैंने उस दिन पिताजी से स्कूल जाने से मना कर दिया। गनीमत थी कि माताजी ने राज़ खुलवा लिया और खूब तसल्ली देकर पिताजी के साथ स्कूल भेजा। कार्यक्रम शुरू हुआ तो मुझे मालूम हुआ कि विद्यालय में जगह की कमी होने के कारण प्रधानाचार्य महोदय ने सीढ़ी को ही बच्चों के लिए मंच के रूप में चुना था। जहाँ हर बच्चा अपनी ऊँचाई के हिसाब से खड़ा हो सकता था। मेरे अग्रज श्री ने तो खामखा ही मुझे डरा दिया था। बड़ा मज़ेदार रहा वह शनिवार।

टोकरी का चक्कर

अकसर प्रिंसिपल साहब दिन में किसी भी समय पीठ पीछे हाथ बाँधकर विद्यालय के राउण्ड पर निकलते हैं। वह किसी को कहते कुछ नहीं और चुपचाप फिर अपने ऑफ़िस की ओर चले जाते हैं। पर शिक्षकों की भाव-भंगिमा में एक स्पष्ट परिवर्तन देखने को मिल सकता है। तब भला बच्चों में क्यों नहीं? बच्चे आदतन कुछ-न-कुछ चीज़ें घर पर छोड़ आते हैं। रोज़मर्रा के अपने राउण्ड में अगर प्रिंसिपल साहब एक टोकरी लेकर (जिसमें रबड़, पेंसिल, चॉकलेट आदि हों) दिन में एक बार एक चक्कर लगा दें तो क्या शिक्षकों व बच्चों की भाव-भंगिमा में फ़र्क आएगा? ज़रूर...

सैर-सपाटा

सैर के नाम से ही बच्चे बल्लियों उछलने लगते हैं। ज़रूरी नहीं है कि किसी लंबे ट्रिप पर ले जाएँ। आप चाहें तो उन्हें स्कूल के आस-पास बगल के खेतों की भी सैर करवा सकते हैं। उनमें नई चीज़ों को जानने की आश जगेगी, नई जानकारियाँ होंगी, कृषि के विषय में भी जानेंगे। काफ़ी खुश होंगे और विद्यालय में भी उनका मन खूब रमेगा। उनमें सक्रियता आएगी और तनावरहित रहेंगे। अगर स्कूल पास हो तो बच्चे को पैदल ही स्कूल जाने दें। यह जानना बड़ा रुचिकर होगा कि एक शोध के नतीजे बताते हैं कि 1970 में लगभग 66 प्रतिशत बच्चे पैदल स्कूल जाया करते थे जबकि आज यह आँकड़ा महज़ 13 प्रतिशत पर सिमट कर रह गया है। चलने-फिरने से बच्चे प्रत्यक्ष रूप से आनन्दित होंगे ही व अप्रत्यक्ष रूप से हृष्ट-पुष्ट होने के फ़ायदे से भी लाभान्वित होंगे।

शायतुक विधि — कल्पनाशक्ति का विकास

शायरी के 'शाय' और तुकबंदी के 'तुक' से मिलाकर बनाई गई 'शायतुक विधि' (मेरी विधि) को मैंने अपनी बी.एड. प्रैक्टिस टीचिंग में काफ़ी कारगर पाया। बच्चों के अमूर्त चिंतन को उभारने व तुकबंदी सिखाने की गर्ज़ से मैंने इस विधि को रचा है। इसमें शिक्षक सबसे पहले बच्चों को बता दें कि कितनी पंक्तियों की कविता लिखनी है। फिर हर बच्चे

को (या टोली बनाकर) उसका शीर्षक बता दें (जैसे — नदी, सूरज, हमारा भारत, चंदा मामा, तितली आदि)। अब उसे तुकबंदी के लिए बताएँ कि पहली-तीसरी या पहली-दूसरी पंक्तियों के अंतिम शब्द ध्वनि में मिलते-जुलते होने चाहिए। उदाहरणस्वरूप चार पंक्तियों को श्यामपट्ट पर लिख भी सकते हैं। बारीकी से निरीक्षण करें व उनके शब्दों में सुधार करें, आपका बाल कवि तैयार है। पियाजे का सिद्धांत ऐसे अमूर्त चिंतन का एक खास समय निर्धारित करता है (11 वर्ष की आयु से)। थोड़े बड़े आयु के बच्चों में इसका प्रयोग सार्थक हो सकता है। इसके प्रयोग से बच्चों में कल्पनाशक्ति (अमूर्त चिंतन) का विकास व शुरुआत होगी। शब्दकोश में वृद्धि के साथ-साथ बच्चे नया भी सोचेंगे।

खाना हो मज़ेदार व पोषक

आधुनिक भारतीय घरों से (खासकर शहरों में) परंपरागत पकवान गायब-सा होता जा रहा है। इसका असर बच्चों के खाने के डिब्बों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। रोटी-सब्ज़ी की जगह दूसरी तमाम चीज़ों ने ले रखी है (वास्तव में, मुझे इनके नाम भी नहीं पता)। कक्षा की थकान के बाद बच्चे को पौष्टिक खाना मिलना ही चाहिए। अभिभावक उनके डिब्बों में प्रोटीन की मात्रा का भरपूर ध्यान रखें। प्रधानाचार्य व शिक्षक भी अपनी भूमिका ज़िम्मेदारी से निभाएँ तो काम आसान होगा। बच्चे की पसंद का भी खयाल रखा जाना चाहिए। पर कहने की बात नहीं कि उसके शरीर की ज़रूरतों को टॉफ़ी, बिस्किट और नमकीन तो पूरा करने से रहे।

हमारे विद्यालय शानदार भी

ये सच है कि बेहतरी की तलाश मानव स्वभाव का एक हिस्सा है और बात जब बच्चों की हो तब तो ज़िम्मेदार लोगों के लिए ये आवश्यक हो ही जाता है कि वे उनके लिए सर्वोत्तम चुनें। पर यदि निष्पक्ष रूप से आकलन करें तो हम पाएँगे कि बहुत-सी ऐसी खासियतें हमारे विद्यालयों की हैं जो अनुकरणीय हैं और शायद और कहीं न मिलें। आज के इस आधुनिक युग में भी हर शिक्षक बच्चे से गुरुकुल परंपरा जैसा ही सम्मान पाना चाहता है और तब उसे भी बच्चे से वैसा ही व्यवहार करना होता है (और वो करता भी है)। फिर बदले में बच्चों में अपने आप ही शिष्टाचार फलने लगता है। कुछ और बहुत-सी अच्छी विशेषताएँ, जैसे — ज्ञान का विकास, अच्छा आचरण, चरित्र विकास पर ज़ोर, नैतिक शिक्षा, संस्कृति की शिक्षा, विश्व बंधुत्व की भावना का विकास, अनुशासन, कृषि व तकनीकी आदि की शिक्षा हमारे स्कूलों की धरोहर-सी हैं। ज़रूरत है बस इन विरासतों को संजोते हुए कुछ गैर-परंपरागत (जो बच्चों के लिए हितकर हों) तरीकों को भी विद्यालयी व्यवस्था में आत्मसात करने की।

चटनी की खेती

मैंने बचपन में अपने स्कूल में चटनी की खेती की है। आप हैरान हैं? हाँ, ये मेरी एक खुराफ़ाती सोच ही है। पर कैसे? आइए बताता हूँ। मेरे प्राइमरी स्कूल में प्रिंसिपल साहब ने थोड़ी ज़मीन छोड़ रखी थी। वहाँ हम बच्चे ही गुड़ाई करते थे। ज़मीन को तीन हिस्सों में बाँटा गया था। तीनों में क्रमशः धनिया, हरी मिर्च तथा लहसुन लगाए गए थे। इनकी पूरी ज़िम्मेदारी हम बच्चों पर थी। अपने घरों से शनिवार के दिन बच्चे मूठ भर चावल लाते। प्रिंसिपल साहब स्कूल में ही उसे भुनवाते। अपने हाथों से धनिया, मिर्च, लहसुन (नमक के साथ) की चटनी बनाते और सभी बच्चों को आमंत्रित करते। हिस्से में बहुत थोड़ा

आने पर भी हम शनिवार के उस चटखारे के लिए बेताब रहते।

ये उन दिनों की बात है

विश्वविद्यालयों में पुरानी यादों को ताज़ा करने का एक रास्ता है — भूतपूर्व छात्र परिषद् (Alumni Association)। विश्वविद्यालय वो अंतिम जगह है जहाँ से कोई शख्स उच्च शिक्षा लेकर बाहर निकलता है। किसी मौके पर पुराने लोगों से मिलना और फिर पुरानी यादों को याद करके प्रफुल्लित होना तन-मन को हवा-सा कर जाता है।

ज़रा गौर करिए, इसी तरह अगर स्कूल के साथी मिल जाएँ और वो बचपन के स्कूली दिन याद हों तो क्या बात हो। पर उसके लिए ज़रूरी है यादगार स्कूली पलों का होना। आपने ऐसे दिन स्कूल में बिताए हों जिन्हें वाकई आप बार-बार याद करना चाहते हों। ऐसे दिन बच्चों को हम शिक्षक ही दे सकते हैं। ताकि समय के किसी अगले मोड़ पर रोज़ी-रोटी की तलाश से फ़ुरसत का एक पल मिलने पर बच्चा (वयस्क) स्कूल के दिनों को याद करके ये कह सके — ये उन दिनों की बात है।

उपसंहार

सारी चर्चा का लुब्बे-लुबाब (सार) ये है कि मासूम बचपन को हर संभव उपाय करके बोझ तले दबने से बचाया जाए।

संदर्भ

कुरोपानागी, तेत्सुको. 2017. *तोतो चान*. अनुवादक, पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत.

बधेका, गिजुभाई. 1988. *दिवास्वप्न*. उत्तर प्रदेश बाल कल्याण समिति, मोती महल, लखनऊ.

बाजपेयी, एल.बी और अभिता बाजपेयी. 2000. *विशिष्ट बालक*. भारत बुक सेंटर, लखनऊ.

मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 1993. *यशपाल समिति की रिपोर्ट, 1993*. एम.एच.आर.डी., भारत सरकार, नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.